इकाई-I

4. तुम कब जाओगे, अतिथि!

रचनाकार

शरद जोशी का जन्म सन् 1931 में मध्य प्रदेश के उज्जैन शहर में हुआ। इनका बचपन कई शहरों में बीता। कुछ समय तक ये सरकारी नौकरी में रहे, फिर इन्होंने लेखन को ही आजीविका के रूप में अपना लिया। इन्होंने आरंभ में कुछ कहानियाँ लिखीं, फिर पूरी तरह व्यंग्य-लेखन ही करने लगे। व्यंग्य लेख, व्यंग्य उपन्यास, व्यंग्य साहित्य को प्रतिष्ठा दिलाने वाले प्रमुख व्यंग्यकारों में शरद जोशी भी एक हैं।

शरद जोशी की प्रमुख व्यंग्य-कृतियाँ हैं- 'परिक्रमा', 'किसी बहाने', 'जीप पर सवार इल्लियाँ', 'तिलस्म', 'रहा किनारे बैठे', 'दूसरी सतह', 'प्रतिदिन'। दो व्यंग्य नाटक हैं- 'अंधों का हाथी' और 'एक था गधा'।

शरद जोशी की भाषा अत्यंत सरल और सहज है। मुहावरों और हास-परिहास का हल्का स्पर्श देकर इन्होंने अपनी रचनाओं को अधिक रोचक बनाया है। धर्म, अध्यात्म, राजनीति, सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत आचरण, कुछ भी शरद जोशी की पैनी नज़र से बच नहीं सका है। इन्होंने अपनी व्यंग्य-रचनाओं में समाज में पायी जाने वाली सभी विसंगतियों का बेबाक चित्रण किया है। पाठक इस चित्रण को पढ़कर चकित भी होता है और बहुत कुछ सोचने को विवश भी।

प्रस्तावना प्रसंग

मेहमाँ जो हमारा होता है,
वो जान से प्यारा होता है।

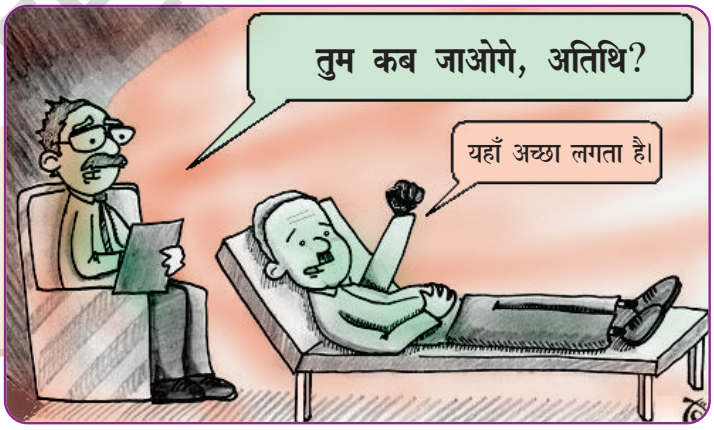

प्रश्न

1. मेहमाँ से क्या तात्पर्य है?
2. गीत पंक्तियाँ और चित्र के भाव की तुलना कीजिए।
3. क्या आज भी मेहमान को जान से प्यारा माना जाता है?

भूमिका

प्रस्तुत पाठ 'तुम कब जाओगे, अतिथि' में शरद जोशी ने ऐसे व्यक्तियों की खबर ली है, जो अपने किसी परिचित या रिश्तेदार के घर बिना कोई पूर्व सूचना दिए चले आते हैं और फिर जाने का नाम ही नहीं लेते, भले ही उनका टिके रहना मेज़बान पर कितना ही भारी क्यों न पड़े। अच्छा अतिथि कौन होता है? वह, जो पहले से अपने आने की सूचना देकर आए और एक-दो दिन मेहमानी कराके विदा हो जाए या वह, जिसके आगमन के बाद मेज़बान वह सब सोचने को विवश हो जाए, जो इस पाठ के मेज़बान निरंतर सोचते रहे।

SCERT TELANGANA

आज तुम्हारे आगमन के चतुर्थ दिवस पर यह प्रश्न बार-बार मन में घुमड़ रहा है- तुम कब जाओगे, अतिथि?

तुम जहाँ बैठे निस्संकोच सिगरेट का धुआँ फेंक रहे हो, उसके ठीक सामने एक कैलेंडर है। देख रहे हो ना! इसकी तारीखें अपनी सीमा में नम्रता से फड़फड़ाती रहती हैं। विगत दो दिनों से मैं तुम्हें दिखाकर तारीखें बदल रहा हूँ। तुम जानते हो, अगर तुम्हें हिसाब लगाना आता है तो यह चौथा दिन है, तुम्हारे शतत आतिथ्य का चौथा भारी दिन! पर तुम्हारे जाने की कोई संभावना प्रतीत नहीं होती। लाखों मील लंबी यात्रा करने के बाद वे दोनों एस्ट्रॉनाट्स भी इतने समय चाँद पर नहीं रुके थे, जितने समय तुम एक छोटी-सी यात्रा कर मेरे घर आए हो। तुम अपने भारी चरण-कमलों की छाप मेरी ज़मीन पर अंकित कर चुके, तुमने एक अंतरंग निजी संबंध मुझसे स्थापित कर लिया, तुमने मेरी आर्थिक सीमाओं की बैंजनी चट्टान देख ली; तुम मेरी काफ़ी मिट्टी खोद चुके। अब तुम लौट जाओ, अतिथि! तुम्हारे जाने के लिए यह उच्च समय अर्थात हाईटाइम है। क्या तुम्हें तुम्हारी पृथ्वी नहीं पुकारती?

उस दिन जब तुम आए थे, मेरा हृदय किसी अज्ञात आशंका से धड़क उठा था। अंदर-ही-अंदर कहीं मेरा बटुआ काँप गया। उसके बावजूद एक स्नेह-भीगी मुसकराहट के साथ मैं तुमसे गले मिला था और मेरी पत्नी ने तुम्हें सादर नमस्ते किया था। तुम्हारे सम्मान में ओ अतिथि, हमने रात के भोजन को एकाएक उच्च-मध्यम वर्ग के डिनर में बदल दिया था। तुम्हें स्मरण होगा कि दो सब्जियों और रायते के अलावा हमने मीठा भी बनाया था। इस सारे उत्साह और लगन के मूल में एक आशा थी। आशा थी कि दूसरे दिन किसी रेल से एक शानदार मेहमाननवाज़ी की छाप अपने हृदय में ले तुम चले जाओगे। हम तुमसे रुकने के लिए आग्रह करेंगे, मगर तुम नहीं मानोगे और एक अच्छे अतिथि की तरह चले जाओगे। पर ऐसा नहीं हुआ! दूसरे दिन भी तुम अपनी अतिथि-सुलभ मुसकान लिए घर में ही बने रहे। हमने अपनी पीड़ा पी ली और प्रसन्न बने रहे। स्वागत-सत्कार के जिस उच्च बिंदु पर हम तुम्हें ले जा चुके थे, वहाँ से नीचे उतर हमने फिर दोपहर के भोजन को लंच की गरिमा प्रदान की और रात्रि को तुम्हें सिनेमा दिखाया। हमारे सत्कार का यह आखिरी छोर है, जिससे आगे हम किसी के लिए नहीं बढ़े। उसके तुरंत बाद भावभीनी विदाई का वह भीगा हुआ क्षण आ जाना चाहिए था। जब तुम विदा होते और हम तुम्हें स्टेशन तक छोड़ने जाते। पर तुमने ऐसा नहीं किया।

तीसरे दिन की सुबह तुमने मुझसे कहा, ''मैं धोबी को कपड़े देना चाहता हूँ।''

यह आघात अप्रत्याशित था और इसकी चोट मार्मिक थी। तुम्हारे सामीप्य की वेला एकाएक यों रबर की तरह खिंच जाएगी, इसका मुझे अनुमान न था। पहली बार मुझे लगा कि अतिथि सदैव देवता नहीं होता, वह मानव और थोड़े अंशों में राक्षस भी हो सकता है।

SCERT TELANGANA

''किसी लॉण्ड्री पर दे देते हैं, जल्दी धुल जाएँगे।?'' मैंने कहा। मन ही मन एक विश्वास पल रहा था कि तुम्हें जल्दी जाना है।

''कहाँ है लॉण्ड्री?''

''चलो चलते हैं।'' मैंने कहा और अपनी सहज बनियान पर औपचारिक कुर्ता डालने लगा।

''कहाँ जा रहे हैं?'' पत्नी ने पूछा।

''इनके कपड़े लॉण्ड्री पर देने हैं।'' मैंने कहा।

मेरी पत्नी की आँखें एकाएक बड़ी-बड़ी हो गईं। आज से कुछ बरस पूर्व उनकी ऐसी आँखें देख मैंने अपने अकेलेपन की यात्रा समाप्त कर दी थी। पर अब जब वे ही आँखें बड़ी होती हैं तो मन छोटा होने लगता है। वे इस आशंका और भय से बड़ी हुई थीं कि अतिथि अधिक दिनों ठहरेगा।

और आशंका निर्मूल नहीं थी, अतिथि! तुम जा नहीं रहे। लॉण्ड्री पर दिए कपड़े धुलकर आ गए और तुम यहीं हो। तुम्हारे भारी भरकम शरीर से सलवटें पड़ी चादर बदली जा चुकी और तुम यहीं हो। तुम्हें देखकर फूट पड़नेवाली मुसकराहट धीरे-धीरे फीकी पड़कर अब लुप्त हो गई है। ठहाकों के रंगीन गुब्बारे, जो कल तक इस कमरे के आकाश में उड़ते थे, अब दिखाई नहीं पड़ते। बातचीत की उछलती हुई गेंद चर्चा के क्षेत्र के सभी कोनों से टप्पे खाकर फिर सेंटर में आकर चुप पड़ी है। अब इसे न तुम हिला रहे हो, न मैं। कल से मैं उपन्यास पढ़ रहा हूँ और तुम फिल्मी पत्रिका के पन्ने पलट रहे हो। शब्दों का लेन-देन मिट गया और चर्चा के विषय चुक गए। परिवार, बच्चे, नौकरी, फिल्म, राजनीति, रिश्तेदारी, तबादले, पुराने दोस्त, परिवार-नियोजन, मँहगाई, साहित्य और यहाँ तक कि आँख मार-मारकर हमने पुरानी प्रेमिकाओं का भी ज़िक्र कर लिया और अब एक चुप्पी है। सौहार्द अब शनैः शनैः बोरियत में रूपांतरित हो रहा है। भावनाएँ गालियों का स्वरूप ग्रहण कर रही हैं, पर तुम जा नहीं रहे। किस अदृश्य गोंद से तुम्हारा व्यक्तित्व यहाँ चिपक गया है, मैं इस भेद को सपरिवार नहीं समझ पा रहा हूँ। बार-बार यह प्रश्न उठ रहा है- तुम कब जाओगे, अतिथि?

कल पत्नी ने धीरे से पूछा था, ''कब तक टिकेंगे ये।''

मैंने कंधे उचका दिए, ''क्या कह सकता हूँ!''

''मैं तो आज खिचड़ी बना रही हूँ। हलकी रहेगी।''

''बनाओ।''

सत्कार की ऊष्मा समाप्त हो रही थी। डिनर से चले थे, खिचड़ी पर आ गए। अब भी अगर तुम अपने बिस्तर को गोलाकार रूप नहीं प्रदान करते तो हमें उपवास तक जाना होगा। तुम्हारे-मेरे संबंध एक संक्रमण के दौर से गुज़र रहे हैं। तुम्हारे जाने का यह चरम क्षण है। तुम जाओ न अतिथि!

SCERT TELANGANA

तुम्हें यहाँ अच्छा लग रहा है न! मैं जानता हूँ। दूसरों के यहाँ अच्छा लगता है। अगर बस चलता तो सभी लोग दूसरों के यहाँ रहते, पर ऐसा नहीं हो सकता। अपने घर की महत्ता के गीत इसी कारण गाये गये हैं। होम को इसी कारण स्वीट होम कहा गया है कि लोग दूसरे के होम की स्वीटनेस को काटने न दौड़ें। तुम्हें यहाँ अच्छा लग रहा है, पर सोचो प्रिय, कि शराफ़त भी कोई चीज़ होती है और गेट आउट भी एक वाक्य है, जो बोला जा सकता है।

अपने खर्राटों से एक और रात गुंजायमान करने के बाद कल जो किरण तुम्हारे बिस्तर पर आएगी वह तुम्हारे यहाँ आगमन के बाद पाँचवें सूर्य की पड़ी किरण होगी। आशा है, वह तुम्हें चूमेगी और तुम घर लौटने का सम्मानपूर्ण निर्णय ले लोगे। मेरी सहनशीलता की वह अंतिम सुबह होगी। उसके बाद मैं स्टैंड नहीं कर सकूँगा और लड़खड़ा जाऊंगा। मेरे अतिथि, मैं जानता हूँ कि अतिथि देवता होता है, पर आखिर मैं भी मनुष्य हूँ। मैं कोई तुम्हारी तरह देवता नहीं। एक देवता और एक मनुष्य अधिक देर साथ नहीं रहते। देवता दर्शन देकर लौट जाता है। तुम लौट जाओ अतिथि! इसी में तुम्हारा देवत्व सुरक्षित रहेगा। यह मनुष्य अपनी वाली पर उतरे, उसके पूर्व तुम लौट जाओ!

उफ़, तुम कब जाओगे, अतिथि?

प्रश्न–अभ्यास

अर्थग्राह्यता–प्रतिक्रिया

❖ विचार–विमर्श

1. प्रसिद्ध उक्ति है– अतिथि देवो भवः। इसके पक्ष–विपक्ष में चर्चा कीजिए।
2. आज की बदली हुई परिस्थिति में अतिथि के आगमन पर हमारा क्या उत्तरदायित्व है?

❖ पढ़ना, भाव समझना और भाव विस्तार

क. पाठ में उत्तर ढूँढ़िए।

1. पाठ में आये निम्नलिखित कथनों की व्याख्या कीजिए।
   क. अंदर ही अंदर कहीं मेरा बटुआ काँप गया।
   ख. लोग दूसरे के होम की स्वीटनेस को काटने न दौड़ें।
   ग. मेरी सहनशीलता की वह अंतिम सुबह होगी।
2. निम्नलिखित भाव से संबंधित पंक्तियाँ कहानी में ढूँढ़िए और उन्हें रेखांकित कीजिए।
   क. लेखक द्वारा बढ़िया भोजन करवाना, सिनेमा दिखाना

SCERT TELANGANA

ख. अतिथि की बात पर लेखक की पत्नी की आँखें बड़ी-बड़ी हो जाना।

ग. अतिथि के आगमन की आरंभिक अवस्था में लेखक के साथ विविध विषयों पर चर्चा।

ख. पाठ समझकर उत्तर दीजिए।

1. लेखक ने मेहमान की तुलना एस्ट्रॉनाट्स से क्यों की?
2. पति और पत्नी ने मेहमान का स्वागत कैसे किया?
3. "अतिथि सदैव देवता नहीं होता, मानव और थोड़े अंशों में राक्षस भी हो सकता है।" इस कथन से आप क्या समझते हैं?
4. लेखक अतिथि को कैसी विदाई देना चाहता था?
5. जब अतिथि चार दिन तक नहीं गया तो लेखक के व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन आए और क्यों?

ग. पढ़ने की योग्यता का विस्तार

नीचे प्रेमचंद की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' का अंश दिया जा रहा है। पढ़िए और पूछे गए प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर संपूर्ण वेश उन महात्माओं का-सा था, जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योग सिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते हैं। घर में जो जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता? प्राचीन काल में जौ का चाहे जो महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्प्राप्य होता है। बड़ी चिन्ता हुई महात्माजी को क्या खिलाऊँ, पर गाँव भर में गेहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य ही मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्य पदार्थ कैसे मिलता? सौभाग्य से गाँव के विप्र महाजन के यहाँ से थोड़े से गेहूँ मिल गये। उनसे सवा सेर गेहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा पीस दे। महात्मा ने भोजन किया और लंबी तानकर सोये। प्रातःकाल आशीर्वाद देकर राह ली।

प्रश्न 1. महात्मा जी के आगमन पर चिंता क्यों हुई?

2. आगंतुक के घर के मालिक से क्या संबंध रहे होंगे?
3. "गाँव में सब मनुष्य ही मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्य पदार्थ कैसे मिलता?" इसके माध्यम से प्रेमचंद ने किस प्रकार का व्यंग्य किया है?

अभिव्यक्ति-सृजनात्मकता

❖ स्वाभिव्यक्ति

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार-पाँच वाक्यों में लिखिए।

1. यदि आप अतिथि बनकर कहीं जाते हैं तो आपकी क्या अपेक्षाएँ होती हैं?

SCERT TELANGANA

2. घर आए अतिथि को आप अपनी कौन-कौनसी वस्तुएँ प्रसन्नता पूर्वक देना चाहेंगे?
3. गाँव और शहरों के आतिथ्य सत्कार में आपको क्या अंतर दिखाई देता है?
4. आपकी दृष्टि में अच्छे अतिथि के क्या लक्षण हैं?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर आठ-दस वाक्यों में लिखिए।

1. "संबंधों के संक्रमण के दौर से गुज़रना" इस पंक्ति से आप क्या समझते हैं? विस्तार से लिखिए।
2. लेखक ने अतिथि को क्या-क्या सुविधाएँ प्रदान कीं?
3. आपके यहाँ एक सप्ताह के लिए यदि आपके नाना-नानी आकर रहें तो आप उनकी किस प्रकार सेवा करेंगे?

❖ सृजनात्मक कार्य

इस कहानी को संवाद रूप में लिखिए। उसका कक्षा-कक्ष में अभिनय कीजिए।

❖ प्रशंसा

"मेहमाँ जो हमारा होता है, वो जान से प्यारा होता है।" भारतीय संस्कृति की महानता में इस विचार की प्रमुख भूमिका रही है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति की कुछ विशेषताएँ लिखिए।

भाषा की बात

1. पर्याय शब्दों के संदर्भ में बेमेल छाँटिए।

चाँद – शशि, सोम, अनल, सुधाकर

अतिथि – अदिति, आगंतुक, मेहमान, पाहुन

दिवस – दिन, वार, वासर,

कमल – सरोज, जलज, पंकज, कुटज

अंतरंग – घनिष्ठ, दोस्ताना, मैत्रीपूर्ण, अंतःपुर

2. पाठ में आए इन वाक्यों में **चुकना** क्रिया के विभिन्न प्रयोगों को ध्यान से देखिए और वाक्य संरचना को समझिए।

क. तुम अपने भारी चरण-कमलों की छाप मेरी ज़मीन पर अंकित **कर चुके**।

ख. तुम मेरी काफ़ी मिट्टी **खोद चुके**।

ग. आदर सत्कार के जिस उच्च बिन्दु पर हम तुम्हें ले **जा चुके** थे...

घ. शब्दों का लेन-देन मिट गया और चर्चा के **विषय चुक गए**।

ङ. तुम्हारे भारी भरकम शरीर से सलवटें पड़ी चादर बदली **जा चुकी** और तुम यहीं हो।

परियोजना कार्य

अतिथि सत्कार के संदर्भ में कोई कहानी ढूँढ़कर पढ़िए और उसे अपने शब्दों में कक्षा में सुनाइए।

SCERT TELANGANA

इस जल प्रलय में

उपवाचक

- फणीश्वरनाथ रेणु

मेरा गाँव ऐसे इलाके में है जहाँ हर साल पश्चिम, पूरब और दक्षिण की कोसी, पनार, महानंदा और गंगा की बाढ़ से पीड़ित प्राणियों के समूह आकर पनाह लेते हैं, सावन-भादों में ट्रेन की खिड़कियों से विशाल और सपाट परती पर गाय, बैल, भैंस, बकरों के हज़ारों झुंड-मुंड देखकर ही लोग बाढ़ की विभीषिका का अंदाज़ा लगाते हैं।

परती क्षेत्र में जन्म लेने के कारण अपने गाँव के अधिकांश लोगों की तरह मैं भी तैरना नहीं जानता। किंतु दस वर्ष की उम्र से पिछले साल तक- ब्वॉय स्काउट, स्वयंसेवक, राजनीतिक कार्यकर्ता अथवा रिलीफ़वर्कर की हैसियत से बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों में काम करता रहा हूँ और लिखने की बात? हाईस्कूल में बाढ़ पर लेख लिखकर प्रथम पुरस्कार पाने से लेकर- धर्मयुग में 'कथा-दशक' के अंतर्गत बाढ़ की पुरानी कहानी को नए पाठ के साथ प्रस्तुत कर चुका हूँ। जय गंगा (1947), डायन कोसी (1948), हड्डियों का पुल (1948), आदि छुटपुट रिपोर्ताज के अलावा मेरे कई उपन्यासों में बाढ़ की विनाश-लीलाओं के अनेक चित्र अंकित हुए हैं। किंतु, गाँव में रहते हुऐ बाढ़ से घिरने, बहने, भंसने और भोगने का अनुभव कभी नहीं हुआ। वह तो पटना शहर में सन् 1967 में ही हुआ, जब अट्ठारह घंटे की अविराम वृष्टि के कारण पुनपुन का पानी राजेंद्रनगर, कंकड़बाग तथा अन्य निचले हिस्सों में घुस आया था। अर्थात बाढ़ को मैंने भोगा है, शहरी आदमी की हैसियत से। इसीलिए इस बार जब बाढ़ का पानी प्रवेश करने लगा, पटना का पश्चिमी इलाका छाती भर पानी में डूब गया तो हम घर में ईंधन, आलू, मोमबत्ती, दियासलाई, सिगरेट, पीने का पानी और कांपोज की गोलियाँ जमाकर बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे।

सुबह सुना, राजभवन और मुख्यमंत्री-निवास प्लावित हो गया है। दोपहर में सूचना मिली, गोलघर जल से घिर गया है! (यों, सूचना बाँग्ला में इस वाक्य से मिली थी- 'जानो! गोलघर डूबे गेछे!') और पाँच बजे जब कॉफ़ी हाउस जाने के लिए (तथा शहर का हाल मालूम करने) निकला तो रिक्शेवाले ने

SCERT TELANGANA

हँसकर कहा- ''अब कहाँ जाइएगा? काफ़ी हाउस में तो 'अबले' पानी आ गया होगा।''

''चलो, पानी कैसे घुस गया है, वही देखना है।'' कहकर हम रिक्शा पर बैठ गए। साथ में नई कविता के एक विशेषज्ञ-व्याख्याता-आचार्य-कवि मित्र थे, जो मेरी अनवरत-अनर्गल-अनगढ़ गद्यमय स्वगतोक्ति से कभी बोर नहीं होते (धन्य हैं!)।

मोटर, स्कूटर, ट्रैक्टर, मोटरसाइकिल, ट्रक, टमटम, साइकिल, रिक्शा पर और पैदल लोग पानी देखने जा रहे हैं, लोग पानी देखकर लौट रहे हैं। देखने वालों की आँखों में, ज़ुबान पर एक ही जिज्ञासा- ''पानी कहाँ तक आ गया है?'' देखकर लौटते हुए लोगों की बातचीत- ''फ्रेजर रोड पर आ गया! आ गया क्या, पार कर गया। श्रीकृष्णापुरी, पाटलिपुत्र कालोनी, बोरिंग रोड? इंडस्ट्रियल एरिया का कहीं पता नहीं...अब भट्टाचार्जी रोड पर पानी आ गया होगा। ....छाती भर पानी है। वीमेंस कॉलेज के पास 'डुबाव-पानी' है। ..आ रहा है! ...आ गया!! ...घुस गया ....डूब गया ....डूब गया ....वह गया!''

हम जब कॉफ़ी हाउस के पास पहुँचें, कॉफ़ी हाउस बंद कर दिया गया था। सड़क के एक किनारे एक मोटी डोरी की शक्ल में गेरुआ-झाग-फेन में उलझा पानी तेज़ी से सरकता आ रहा था। मैंने कहा- ''आचार्य जी, आगे जाने की ज़रूरत नहीं। वो देखिए- आ रहा है....मृत्यु का तरल दूत!''

आतंक के मारे दोनों हाथ बरबस जुड़ गए और सभय प्रणाम-निवेदन में मेरे मुँह से कुछ अस्फुट शब्द निकले (हाँ, मैं बहुत कायर और डरपोक हूँ!)।

रिक्शावाला बहादुर है कहता है- 'चलिए न, थोड़ा और आगे!'

भीड़ का एक आदमी बोला- ''ए रिक्शा, करेंट बहुत तेज़ है। आगे मत जाओ।''

मैंने रिक्शा वाले से अनुनय भरे स्वर में कहा- ''लौटा ले भैया। आगे बढ़ने की ज़रूरत नहीं।''

रिक्शा मोड़कर हम 'अप्सरा' सिनेमा हॉल (सिनेमा-शो बंद!) के बगल से गांधी मैदान की ओर चले। पैलेस होटल और इंडियन एयरलाइंस दफ़्तर के सामने पानी भर रहा था। पानी की तेज़ धारा पर लाल-हरे 'नियन' विज्ञापनों की परछाइयाँ सैकड़ों रंगीन साँपों की सृष्टि कर रही थीं। गांधी मैदान की रैलिंग के सहारे हज़ारों लोग खड़े देख रहे थे। दशहरा के दिन रामलीला के 'राम' के रथ की प्रतीक्षा में जितने लोग रहते हैं, उससे कम नहीं थे... गांधी मैदान के आनंद-उत्सव, सभा सम्मेलन और खेलकूद की सारी स्मृतियों पर धीरे-धीरे एक गैरिक आवरण आच्छादित हो रहा था। हरियाली पर शनैः शनैः पानी फिरते देखने का अनुभव सर्वथा नया था। इसी बीच एक अधेड़, मुस्टंड और गँवार ज़ोर-ज़ोर से बोल उठा- ''ईह! जब दानापुर डूब रहा था तो पटनियाँ बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए...अब बूझो!''

मैंने अपने आचार्य-कवि मित्र से कहा- ''पहचान लीजिए। यही है वह 'आम आदमी', जिसकी खोज हर साहित्यिक गोष्ठियों में होती रहती है। उसके वक्तव्य में 'दानापुर' के बदले 'उत्तर बिहार' अथवा कोई भी बाढ़ग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र जोड़ दीजिए .....''

शाम के साढ़े सात बज चुके और आकाशवाणी के पटना केंद्र से स्थानीय समाचार प्रसारित हो रहा था। पान की दुकानों के सामने खड़े लोग, चुपचाप, उत्कर्ण होकर सुन रहे थे .....।

''...पानी हमारी स्टूडियों की सीढ़ियों तक पहुँच चुका है और किसी भी क्षण स्टूडियो में प्रवेश कर सकता है।''

समाचार दिल दहलाने वाला था। कलेजा धड़क उठा। मित्र के चेहरे पर भी आतंक की कई रेखाएँ

SCERT TELANGANA

उभरीं। किंतु हम तुरंत ही सहज हो गए; यानी चेहरे पर चेष्टा करके सहजता ले आए, क्योंकि हमारे चारों ओर कहीं कोई परेशान नज़र नहीं आ रहा था। पानी देखकर लौटते हुए लोग आम दिनों की तरह हँस-बोल रहे थे, बल्कि आज तनिक उत्साहित थे। हाँ, दुकानों में थोड़ी हड़बड़ी थी। नीचे के सामान ऊपर किए जा रहे थे। रिक्शा, टमटम, ट्रक और टेम्पो पर सामान लादे जा रहे थे। खरीद-बिक्री बंद हो चुकी थी। पानवालों की बिक्री अचानक बढ़ गई थी। आसन्न संकट से कोई प्राणी आतंकित नहीं दिख रहा था।

....पानवाले के आदमकद आईने में उतने लोगों के बीच हमारी ही सूरतें 'मुहर्रमी' नज़र आ रही थीं। मुझे लगा, अब हम यहाँ थोड़ी देर भी ठहरेंगे तो वहाँ खड़े लोग किसी भी क्षण ठठाकर हम पर हँस सकते थे- ''ज़रा इन बुज़दिलों का हुलिया देखो!'' क्योंकि वहाँ ऐसी ही बातें चारों ओर से उछाली जा रही थीं- ''एक बार डूब ही जाए! ...धनुष्कोटि की तरह पटना लापता न हो जाए कहीं!... सब पाप धुल जाएगा....चलो, गोलघर के मुँडे पर ताश की गड्डी लेकर बैठ जाएँ....बिस्कोमान बिल्डिंग की छत पर क्यों नहीं?...भई, यही माकूल मौका है। इनकम टैक्सवालों को ऐन इसी मौके पर काले कारबारियों के घर पर छापा मारना चाहिए। आसामी बा-माल...''

राजेंद्रनगर चौराहे पर 'मैगज़ीन कॉर्नर' की आखिरी सीढ़ियों पर पत्र-पत्रिकाएँ पूर्ववत् बिछी हुई थीं। सोचा, एक सप्ताह की खुराक एक ही साथ ले लूँ। क्या-क्या ले लूँ?... हेडली चेज़, या एक ही सप्ताह में फ्रेंच/जर्मन सिखा देने वाली किताबें अथवा 'योग' सिखाने वाली कोई सचित्र किताब? मुझे इस तरह किताबों को उलटते-पलटते देखकर दुकान का नौजवान मालिक कृष्णा पता नहीं क्यों मुसकराने लगा। किताबों को छोड़ कई हिंदी-बाँग्ला और अंग्रेज़ी सिने पत्रिकाएँ लेकर लौटा। मित्र से विदा होते हुए कहा- ''पता नहीं, कल हम कितने पानी मे रहें। ....बहरहाल, जो कम पानी में रहेगा। वह ज़्यादा पानी में फँसे मित्र की सुधि लेगा।''

फ़्लैट में पहुँचा ही था कि 'जनसंपर्क' की गाड़ी भी लाउडस्पीकर से घोषणा करती हुई राजेंद्रनगर पहुँच चुकी थी। हमारे 'गोलंबर' के पास कोई भी आवाज़, चारों बड़े ब्लॉकों की इमारतों से टकराकर मँडराती हुई, बार-बार प्रतिध्वनित होती है। सिनेमा अथवा लॉटरी की प्रचारगाड़ी यहाँ पहुँचते ही- 'भाइयो' पुकारकर एक क्षण के लिए चुप हो जाती है। पुकार मँडराती हुई प्रतिध्वनित होती है-भाइयो... भाइयो.. भाइयो...! एक अलमस्त जवान रिक्शाचालक है जो अकसर रात के सन्नाटे में सवारी पहुँचाकर लौटते समय इस गोलंबर के पास अलाप उठता है- 'सुन मेरे बंधु रे-ए-न...सुन मोरे मितवा-वा-वा-य...'

गोलंबर के पास जनसंपर्क की गाड़ी से ऐलान किया जाने लगा- ''भाइयो.! ऐसी संभावना है... कि बाढ़ का पानी...रात्रि के करीब बारह बजे तक...लोहानीपुर, कंकड़बाग और राजेंद्रनगर में घुस जाए। अतः आप लोग सावधान हो जाएँ।''

(प्रतिध्वनि-सावधान हो जाएँ! सावधान हो जाएँ!)

मैंने गृहस्वामिनी से पूछा- ''गैस का क्या हाल है?''

''बस, उसी का डर है। अब खत्म होने वाला है। असल में सिलिंडर में 'मीटर-उटर' की तरह कोई चीज़ नहीं होने से कुछ पता नहीं चलता। लेकिन, अंदाज़ है कि एक या दो दिन...कोयला है। स्टोव है। मगर किरासन एक ही बोतल....''

''फिलहाल, बहुत है....बाढ़ का भी यही हाल है। मीटर-उटर की तरह कोई चीज़ नहीं होने से पता

नहीं चलता कि कब आ धमके।''-मैंने कहा।

सारे राजेंद्रनगर में 'सावधान-सावधान' ध्वनि कुछ देर गूँजती रही। ब्लॉक के नीचे की दुकानों से सामान हटाए जाने लगे। मेरे फ़्लैट के नीचे के दुकानदार ने, पता नही क्यों, इतना कागज़ इकट्ठा कर रखा था। एक अलाव लगाकर सुलगा दिया। हमारा कमरा धुएँ से भर गया।

सारा शहर जगा हुआ है। पश्चिम की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा करता हूँ...हाँ पीरमुहानी या सालिमपुरा-अहरा अथवा जनक किशोर-नवलकिशोर रोड की ओर से कुछ हलचल की आवाज़ आ रही है। लगता है, एक-डेढ़ बजे रात तक पानी राजेंद्रनगर पहुँचेगा।

सोने की कोशिश करता हूँ। लेकिन नींद आएगी भी? नहीं, कांपोज की टिकिया अभी नहीं। कुछ लिखूँ? किंतु क्या लिखूँ...कविता? शीर्षक-बाढ़ आकुल प्रतीक्षा?

नींद नहीं, स्मृतियाँ आने लगीं-एक-एक कर। चलचित्र के बेतरतीब दृश्यों की तरह!

1947.....मनिहारी (तब पूर्णिया, अब कटिहार ज़िला) के इलाके में गुरुजी (स्व. सतीनाथ भादुड़ी) के साथ गंगा मैया की बाढ़ से पीड़ित क्षेत्र में हम नाव पर जा रहे हैं। चारों ओर पानी ही पानी। दूर, एक 'दूवीप' जैसा बालूचर दिखाई पड़ा। हमने कहा, वहाँ चलकर ज़रा चहलकदमी करके टाँगें सीधी कर लें। भादुड़ी जी कहते हैं- ''किंतु, सावधान! ऐसी जगहों पर कदम रखने के पहले यह मत भूलना कि तुमसे पहले ही वहाँ हर तरह के प्राणी शरणार्थी के रूप में मौजूद मिलेंगे'' और सचमुच-चींटी-चींटे से लेकर साँप-बिच्छू और लोमड़ी-सियार तक यहाँ पनाह ले रहे थे..भादुड़ी जी की हिदायत थी- हर नाव पर 'पकाही घाव' (पानी में पैर की उँगलियाँ सड़ जाती हैं। तलवों में भी घाव हो जाता है) की दवा, दियासलाई की डिबिया और किरासन तेल रहना चाहिए और, सचमुच हम जहाँ जाते, खाने-पीने की चीज़ से पहले 'पकाही घाव' की दवा और दियासलाई की माँग होती...

1949 ....उस बार महानंदा की बाढ़ से घिरे बापसी थाना के एक गाँव में हम पहुँचे। हमारी नाव पर रिलीफ़ के डाक्टर साहब थे। गाँव के कई बीमारों को नाव पर चढ़ाकर कैंप में ले जाना था। एक बीमार नौजवान के साथ उसका कुत्ता भी 'कुंई-कुंई' करता हुआ नाव पर चढ़ आया। डाक्टर साहब कुत्ते को देखकर 'भीषण भयभीत' हो गए और चिल्लाने लगे- ''आ रे! कुकुर नहीं, कुकुर नहीं...कुकुर को भगाओ!'' बीमार नौजवान छप-से पानी में उतर गया- ''हमार कुकुर नहीं जाएगा तो हम हुँ नहीं जाएगा।'' फिर कुत्ता भी छपाक पानी में गिरा- ''हमार आदमी नहीं जाएगा तो हम हुँ नहीं जाएगा''....परमान नदी की बाढ़ में डूबे हुए एक 'मुसहरी' (मुसहरों की बस्ती) में हम राहत बाँटने गए। खबर मिली थी वे कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसाकर खा रहे हैं। किसी तरह जी रहें हैं। किंतु टोले के पास जब हम पहुँचे तो ढोलक और मंजीरा की आवाज़ सुनाई पड़ी। जाकर देखा, एक ऊँची जगह 'मचान' बनाकर स्टेज की तरह बनाया गया है। 'बलवाही' नाच हो रहा था। लाल साड़ी पहनकर काला-कलूटा 'नटुआ' दुलहिन का हाव-भाव दिखला रहा था; यानी, वह 'धानी' है। 'घरनी' (धानी) घर छोड़कर मायके भागी जा रही है और उसका घरवाला (पुरुष) उसको मनाकर राह से लौटाने गया है। इस पद के साथ ही ढोलक पर द्रुत ताल बजने लगा -'धागिड़गिड़-धागिड़गिड़-चकैके चकधुम चकैके चकधुम-चकधुम चकधुम!' कीचड़ पानी में लथपथ भूखे-प्यासे-नर-नारियों के झुंड में मुक्त खिलखिलाहट लहरें लेने लगती है। हम रिलीफ़ बाँटकर भी ऐसी हँसी उन्हें दे सकेंगे क्या! (शास्त्री जी, आप कहाँ है?) बलवाही नाच की बात उठते ही मुझे अपने परम मित्र भोला शास्त्री की याद हमेशा क्यों आ जाती है? यह एक बार,

SCERT TELANGANA

1937 में, सिमरवनी-शंकरपुर में बाढ़ के समय 'नाव' को लेकर लड़ाई हो गई थी। मैं उस समय 'बालचर' (ब्वाय स्काउट) था। गाँव के लोग नाव के अभाव में केले के पौधे का 'भेला' बनाकर किसी तरह काम चला रहे थे और वहीं जमींदार के लड़के नाव पर हरमोनियम-तबला के साथ झिंझिर (जल-विहार) करने निकले थे। गाँव के नौजवानों ने मिलकर उनकी नाव छीन ली थी। थोड़ी मारपीट भी हुई थी...।

और 1967 में जब पुनपुन का पानी राजेंद्रनगर में घुस आया था, एक नाव पर कुछ सजे-धजे युवक और युवतियों की टोली किसी फ़िल्म में देखे हुए कश्मीर का आनंद घर-बैठे लेने के लिए निकली थीं। नाव पर स्टोव जल रहा था- केतली चढ़ी हुई थी, बिस्कुट के डिब्बे खुले हुए थे, एक लड़की प्याली में चम्मच डालकर एक अनोखी अदा से नेस्कैफे के पाउडर को मथ रही थी- 'एस्प्रेसो' बना रही थी, शायद। दूसरी लड़की बहुत मनोयोग से कोई सचित्र और रंगीन पत्रिका पढ़ रही थी। एक युवक दोनों पाँवों को फैलाकर बाँस की लग्गी से नाव खे रहा था। दूसरा युवक पत्रिका पढ़ने वाली लड़की के सामने, अपने घुटने पर कोहनी टेककर कोई मनमोहक 'डायलॉग' बोल रहा था। पूरे 'वाल्यूम' में बजते हुए 'ट्रांजिस्टर' पर गाना आ रहा था- 'हवा में उड़ता जाए, मोरा लाल दुपट्टा मलमल का, हो जी हो जी!' हमारे ब्लॉक के पास गोलंबर में नाव पहुँची थी कि अचानक चारों ब्लॉक की छतों पर खड़े लड़कों ने एक साथ किलकारियों, सीटियों, फब्तियों की वर्षा कर दी और इस गोलंबर में किसी भी आवाज़ की प्रतिध्वनि मँडरा-मँडराकर गूँजती है। सो सब मिलाकर स्वयं ही जो ध्वनि संयोजन हुआ, उसे बडे-से-बड़े गुणी संगीत निर्देशक बहुत कोशिश के बावजूद नहीं कर पाते। उन फूहड़ युवकों की सारी 'एक्ज़बिशनिज़्म' तुरंत छुमंतर हो गई और युवतियों के रंगे लाल-लाल ओंठ और गाल काले पड़ गए। नाव पर अकेला ट्रांजिस्टर था जो पूरे दम के साथ मुखर था- 'नैया तोरी मंझधार, होश्यार होश्यार'!

''काहो रामसिंगार, पनियां आ रहलो है?''

''ऊँहूँ, न आ रहलौ है।''

ढाई बज गए, मगर पानी अब तक आया नहीं, लगता है कहीं अटक गया, अथवा जहाँ तक आना था आकर रुक गया, अथवा तटबंध पर लड़ते हुए इंजीनियरों की जीत हो गई शायद, या कोई दैवी चमत्कार हो गया! नहीं तो पानी कहीं भी जाएगा तो किधर से? रास्ता तो इधर से ही है...चारों ब्लॉकों के प्रायः सभी फ़्लैटों की रोशनी जल रही है, बुझ रही है। सभी जगे हुए हैं। कुत्ते रह-रहकर सामूहिक रुदन करते हैं और उन्हें रामसिंगार की मंडली डाँटकर चुप करा देती है। चौप...चौप..!

मुझे अचानक अपने उन मित्रों और स्वजनों की याद आई जो कल से ही पाटलीपुत्र कॉलोनी, श्रीकृष्णपुरी, बोरिंग रोड के अथाह जल में घिरे हैं...जितेंद्र जी, विनीता जी, बाबू भैया, इंदिरा जी, पता नहीं कैसे हैं- किस हाल में हैं वे! शाम को एक बार पड़ोस में जाकर टेलीफ़ोन करने के लिए चोंगा उठाया- बहुत देर तक कई नंबर डायल करता रहा। उधर सन्नाटा था एकदम। कोई शब्द नहीं- 'टुंग फुंग' कुछ भी नहीं।

बिस्तर पर करवट लेते हुए फिर एक बार मन में हुआ, कुछ लिखना चाहिए। लेकिन क्या लिखना चाहिए? कुछ भी लिखना संभव नहीं और क्या ज़रूरी है कि कुछ लिखा ही जाए? नहीं। फिर स्मृतियों को जगाऊँ तो अच्छा....पिछले साल अगस्त में नरपतगंज थाना चकरदाहा गाँव के पास छातीभर पानी में खड़ी एक आसन्नप्रसवा हमारी ओर गाय की तरह टुकुर-टुकुर देख रही थी....

SCERT TELANGANA

नहीं, अब भूली-बिसरी याद नहीं, बेहतर है, आँखें मूँदकर सफ़ेद भेड़ों के झुंड देखने की चेष्टा करूँ...उजले-उजले सफ़ेद भेड़...सफ़ेद भेड़ों के झुंड। झुंड..किंतु सभी उजले भेड़ अचानक काले हो गए। बार-बार आँखें खोलता हूँ, मूँदता हूँ। काले को उजला करना चाहता हूँ। भेड़ों के झुंड भूरे हो जाते हैं। उजले भेड़...उजले भेड़..काले भूरे...किंतु उजले...उजले...गेहुएँ रंग के भेड़...।

'ओई दूयाखो- एसे गेछे जल'! -झकझोरकर मुझे जगाया गया। घड़ी देखी, ठीक साढ़े पाँच बज रहे थे। सवेरा हो चुका था...आ रहलौ है! आ रहलौ है पनियां! पानी आ गेलौ। हो रामसिंगार! हो मोहन! रामचन्नर-अरे हो...

आँखें मलता हुआ उठा। पश्चिम की ओर, थाना से सामने सड़क पर मोटी डोली की शक्ल में- मुँह में झाग-फेन लिए -पानी आ रहा है ठीक वैसा ही जैसा शाम को कॉफ़ी हाउस के पास देखा था। पानी के साथ-साथ चलता हुआ, किलोल करता हुआ बच्चों का एक दल.... उधर पश्चिम-दक्षिण कोने पर दिनकर अतिथिशाला से और आगे भंगी बस्ती के पास बच्चे कूद क्यों रहे हैं? नहीं, बच्चे नहीं, पानी है। वहाँ मोड़ है, थोड़ा अवरोध है- इसलिए पानी उछल रहा है ....पश्चिम -उत्तर की ओर, ब्लॉक नंबर एक के पास पुलिस चौकी के पिछवाड़े में पानी का पहला रेला आया...ब्लॉक नंबर चार के नीचे सेठ की दुकान के बाएँ बाजू में लहरें नाचने लगीं।

अब मैं दौड़कर छत पर चला गया। चारों ओर शोर-कोलाहल-कलरव-चीख-पुकार और पानी का कलकल रव। लहरों का नर्तन। सामने फुटपाथ को पार कर अब पानी हमारे पिछवाड़े में सशक्त बहने लगा है। गोलबर के गोल पार्क के चारों ओर पानी नाच रहा है...आ गया, आ गया! पानी बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है, चढ़ रहा है, करेंट कितना तेज़ है? सोन का पानी है। नहीं, गंगा जी का है। आ गैलो...

सामने की दीवार की ईंटें जल्दी-जल्दी डूबती जा रही हैं। बिजली के खंभे का काला हिस्सा डूब गया। ताड़ के पेड़ का तना क्रमशः डूबता जा रहा है....डूब रहा है।

....अभी यदि मेरे पास मूवी कैमरा होता, अगर एक टेप-रिकार्डर होता! बाढ़ तो बचपन से देखता आया हूँ, किंतु पानी का इस तरह आना कभी नहीं देखा। अच्छा हुआ जो रात में नहीं आया। नहीं तो भय के मारे न जाने मेरा क्या हाल होता..देखते ही देखते गोल पार्क डूब गया। हरियाली लोप हो गई। अब हमारे चारों ओर पानी नाच रहा था..भूरे रंग के भेड़ों के झुंड। भेड़ दौड़ रहे हैं -भूरे भेड़, वह चायवाले की झोंपड़ी गई, चली गई। काश, मेरे पास एक मूवी कैमरा होता, एक टेप-रिकार्डर होता? अच्छा है, कुछ भी नहीं। कलम थी, वह भी चोरी चली गई। अच्छा है, कुछ भी नहीं-मेरे पास।

प्रश्न-

1. बाढ़ की खबर सुनकर लोग किस तरह की तैयारी करने लगे?
2. बाढ़ की सही जानकारी लेने और बाढ़ का रूप देखने के लिए लेखक क्यों उत्सुक था?
3. 'मृत्यु का तरल दूत' किसे कहा गया है और क्यों?
4. आपदाओं से निपटने के लिए अपनी तरफ़ से कुछ सुझाव दीजिए।
5. 'ईह! जब दानापूर डूब रहा था तो पटनियाँ बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए...अब बूझो!'- इस कथन द्वारा लोगों की किस मानसिकता पर चोट की गयी है?

SCERT TELANGANA